Knowledge Consortium of Gujarat
Department of Higher Education - Government of Gujarat
Journal of Humanity - ISSN : 2279-0233
Continuous Issue-27 | October – December 2016

"महाभारत के नारी पात्र : अतीत और वर्तमान में- एक समीक्षा"

साहित्य और समाज परस्पर सम्बद्ध है। सत्साहित्य जहाँ समाज को प्रेरित करता है वहीं असत् साहित्य समाज में असाधु संस्कारों का बीजवपन करता है। दूसरी ओर समाज का साहित्य पर प्रगाढ प्रभाव पडता हैं।साहित्य में वर्णित किसी वर्गविशेष की स्थिति तत्कालीन समाज में उसकी स्थति को ही प्रतिफलित करती है। रामायण तथा महाभारत सर्वाधिक पूजनीय धार्मिक ग्रन्थ होने पर भी साहित्य को प्रतिबिम्बित करने में पूर्णतया सक्षम है। रामायण जहाँ एक आदर्श परिवार को माध्यम बनाकर उच्च आदर्शों, मानवीय मूल्यों, नैतिकता आदि समस्त अनुकरणीय भावों को मूर्तरूप में प्रतिफलित करने वाला काव्य है वहीं महाभारत एक सम्पूर्ण वंश तथा उससे जुडे समाज और उस कालखण्ड के चित्रण के द्वारा तत्कालीन समाज की अवस्था को सफलता से रूपायित करता है। नारी समाज का एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। नारी का सबसे प्रमुख स्थान होता है उसका घर जहाँ वह पुत्री, भगिनी, पत्नी, माता, वधू आदि एनेक रूपों मे रहती है। **'गृहिणी गृहमुच्यते'** से स्पष्ट है कि गृहस्थ आश्रम नारी-पुरुष के मिलित प्रयास का ही नाम है। परंतु संस्कृत वाङ्गमय में नारी का स्थान अतीत और वर्तमान में देखा जाये तो क्या था ? प्रस्तुत शोधपत्र में महाभारत के नारी पात्रों का प्रवर्तमान परिप्रेक्ष में अभ्यास करने का प्रयास किया गया है।

संस्कृत वाङ्गमय में वैदिक गृहस्थ नारी, चाहे घर हो या बहार, उचित सम्मान की अधिकारिणी थी। आदि काव्य तक आते- आते वह बन्दिनी सीता में परिणत हो गई। लङ्का- विजय के पश्चात् राम का सीता के प्रति कथन किसी भी सम्मानित नारी के लिये चरम अपमानकर तब भी था, आज भी है और भविष्य में भी रहेगा । पत्नी का अपहरण हुआ। उसने आत्मरक्षा के लिये यथासाध्य प्रयास किया परन्तु दुर्धर्ष पुरुष की शक्ति के सामने उसकी क्या बिसात। ऐसी निरपराधिनी पत्नी को यह कहना - 'लक्ष्मण,विभीषण आदि जिसके पास जाना चाहो, चली जाओ' किसी भी दृष्टि से क्षम्य भी नहीं, सह्य भी नहीं। पुरुष यदि स्वयं को पालनकर्ता , भर्ता कहलाता है तो रक्षणावेक्षण का दायित्व भी उसी का है। यदि वो उसमें असफल रहा तो पत्नी के समक्ष अपराधि है,दण्ड देने का अधिकारी नहीं। और अश्वमेध के उपरान्त, सुदीर्ध वनवास के पश्चात् लव- कुश सहित प्राप्त उसी सीता से पुनः अपने सतीत्व को प्रमाणित करने की मांग तो अचिन्त्य अपराध है। समाज का यह कैसा निर्णय? जीसकी सन्तान को अपना वंशधर मान सादर स्वीकार किया जा रहा है,उसी अपनी जाया से शुद्धि की मांग, यह अन्याय तो है ही, तर्कसङ्गत भी नहीं है। यह एक घटना मात्र नहीं, नारी की स्थिति के हास का प्रथम उदाहरण है। वेदकालीन गृहस्वामिनी का आसन डोल गया। पति- पत्नी समान ऊंचाई पर नहिं रहे। पति पत्नी का साथी ,सहचर, समपर्यय का नहीं रहा, वह अधिकारी, स्वामी, दण्डमुण्ड- विधाता, निर्णायक बन गया।

महाभारत के नारी पात्रों पर भी विहङ्गम दृष्टि डालनी अपेक्षित है। महाभारत की नारी कहते ही वेदव्यास की जिस अतुलनीया कल्पना की ओर ध्यान जाता है, वह और कोई नहीं , महभारत युद्ध की

केन्द्रबिन्दु तथा समस्त महाभारत कथा की प्राणभूता द्रौपदी है। पाञ्चालराज की कन्या ,यज्ञकुण्ड से आविर्भूता याज्ञसेनी, कृष्णा द्रुपदराज की पुत्री होने के कारण द्रौपदी नाम से ही अधिक परिचिता है। द्रौपदी का जीवन वृत्तान्त यहाँ उपस्थित करना न तो अपेक्षित है और न सम्भव। उसके जीवन के एकार्ध चित्र मात्र उसके व्यक्तीत्व को समेटने में पर्याप्त होंगा।

धृतराष्ट्र की राज्यसभा में युधिष्ठिर दुर्योधन से द्यूत हार चुके है। सर्वस्व दांव पर लगाकर सबसे हाथ धो चुके हैं। फीर भी सन्धि के फलस्वरूप द्रौपदी को राजसभा में बुलाकर अपमानित और लाञ्छित करने की गरज से दुर्योधन का सारथी प्रतिकामी को द्रौपदी के समीप भेजा जाता है तथा वह समस्त वृत्तान्त सुनाकर उसे राजसभा में उपस्थित होने को कहता है। द्रौपदी के स्थान पर अन्य कोई नारी होती तो उसकी प्रतिक्रिया होती- डरती, आतङ्कित अथवा आशङ्कित होती, रोती विलाप करती अथवा यदी बहुत बहादुर होती तो पैर पटकते राज्यसभा में जाकर अपना विरोध प्रकट करती। द्रौपदी ऐसा कुछ नहीं करती। प्रतीकामी के माध्यम से एक प्रश्न करती है-

गच्छ त्वं कितवं गत्वा सभायां पृच्छ सूतद।
किं नु पूर्वं पराजैसीरात्मानं मां नु भारत।
एतत्ज्ञात्वा त्वमागच्छ ततो मां नय सूतज।।[1] म.भा.सभा.प.60-7।।

'पहले उस जुआरी (युधुष्ठिर) से पूछों कि पहले उसने स्वयं को हारा या मुझे। बाद में मुझे ले जाना।'

सामान्य प्रश्न नहीं था। यह एक नैतिक,वैधानिक समस्या थी। स्वयं को हारने के पश्चात् व्यक्ति समस्त अधिकारों से वञ्चित हो जाता है।जिसका स्वत्व ही न रहा, वह दूसरों पर कैसा अधिकार रखेगा। स्वयं सत्त्वहीन पत्नी का स्वामी कैसे ? द्रौपदी पर युधिष्ठिर का दो प्रकार से अधिकार हो सकता था। राजा होने के नाते तथा पति होने के नाते। हारने के पश्चात् राजा का अधिकार तो गया और स्वामित्व का भी । खुदको हारना अधिकारों को हारना तो होता है। प्रश्न है ऐसा प्रश्न करने वाली किस मानसिक स्तर की हो सकती है? उत्तर स्पष्ट है। द्रौपदी का प्रश्न अपने पति से मान-मनोबल का प्रश्न नहीं था। विधि का, कानून का, नियम का प्रश्न था एक चुनौती थी, था अधिकार का प्रश्न। और यह प्रश्न केवल युधिष्ठिर का नहीं था। था न्यायदण्ड सम्भालने वाले राजा धृतराष्ट्र से, राज्य के नीतिनियामक पितामह भीष्मसे, नीतिज्ञ विदुर से,राज्यसभा में बैठे प्रत्येक अधिकारी से,प्रत्येक प्रत्यक्षदृष्टा से, परोक्ष में रहने वाली माताओं से जिन्होने अपने पुत्र को उसके अधिकार की सीमा नहीं बतायी। तत्कालीन समाज में और वर्तमान समाज में भी नारी और पुरुष का झगडा अधिकार का ही तो झगडा होता है। पुरुष, चाहे किसी भी परिचय में बंधा हो, जब नारी पर अपने अधिकार की सीमा को लांध कर अधिकार जताता है तभी वह अधिकार नहीं रहता, अत्याचार हो जाता है। और विरोध उसी अत्याचारका होता है ,अधिकार का नहीं। आज भी समाज में नारी को व्यक्ति कम और वस्तु ज्यादा माना जाता है। वर्तमान में भी कई घरों में अनेक द्रौपदी अपने अधिकारी पुरुष का अत्याचार सह रही है।

उसी राजसभा का एक और दृश्य। भीरू, लोभी, मोहग्रस्त, अविवेकी, धृतराष्ट्र का परिस्थिति को सम्भालने का असफल प्रयत्न- द्रौपदी का नहीं, उसके क्रुद्ध पतियों विशेषकर भीम और अर्जुन के क्रोध से अपने पुत्रों की रक्षा के लिए,उन्हें प्रसन्न करने की एक चेष्टा द्रौपदी की प्रशंसा करते हुए से वर प्रदान करना। धन्य है वेदव्यास की नारी हृदय की अतल गहराइयों में झांकने की क्षमता- क्या मांगा द्रौपदी ने? अभी जिससे अधिकार का प्रश्न उठा रही थी, अपमानित होती हुई राजसभा में प्रवेश करते समय मन की पुञ्जीभूत धृणा,

उपेक्षा,तिरस्कार,भर्त्सना और क्रोध के मिश्रित दृष्टिपात से जिसे दग्ध कर दिया उस अपराधी ज्येष्ठ पति युधिष्ठिर की दासत्व से मुक्ति। जैस-

ददासि चेद्वरं मह्यं वृणोमि भरतर्षभ।
सर्वधर्मुनगः श्रीमानदासोऽस्तु युधिष्ठरः।।[2] (म.भा.स.प.63-28)

यह वर मांगना भी साधारण बात नहीं थी।यह मात्र साधवी पतिव्रता पत्नी का धर्मनिर्वाह नहीं था, प्रेमिका पत्नी का कार्य भी नहीं था।विवेकपूर्वक सोचा- समझा पदक्षेप था। राजा का दास होना व्यक्ति की क्षति नहीं थी,राज्य की, प्रजा की,समाज की, संस्कृति की क्षति थी।पूर्ण राष्ट्र की क्षति थी।अधिकारी या राजा का दास बनना तो इतिहास का परम क्षण होता है जिससे पूरा राज्य अपनी स्वतन्त्रता को खोकर पराधीन हो जाता है।यहाँ द्रौपदी के चरित्र की इन दोनों धटनाओं से केवल इतना कहना अभीष्ट है कि द्रौपदी मात्र उतनी और वैसी नहीं जितनी साधारणतया दिखती है। वह विदुषी है, सुपण्डिता है, शास्त्रों की ज्ञाता है, विवेकशीला है, दूरदृष्टि की अधिकारीणी है। एक राजा मे, एक शासक में जो भी गुण होने चाहिए सभी की स्वामिनी है।

द्रौपदी का एक चित्र और भी है। कृष्णप्रिया सत्यभामा द्रौपदी से पति को वश में रखने का गुर जानना चाहती है। द्रौपदी उसे व्रत, मन्त्र, अथवा औषधि देती है-व्रत है सेवाव्रत। स्वयं राजरानी है अथवा वनवासिनी, वह स्वयं अपने हाथों से पति तथा सास की सेवा करती है। सामान्य दास- दासी के करणीय कार्यों को करने में न लज्जा है और न सङ्कोच। मन्त्र देती है कर्मठता का। गृहस्थ में रहती नारी को अलस्य नही करना, प्रमाद तो कभी भी नहीं। मन्त्र देती है पति के द्वेषियों, विरोधियों से दूर रहने का ,उसके स्नेही जनों से स्नेह करने का ।औषधि यह देती है की परपुरूष, चाहे निकटस्थ आत्मीय क्यों न हो, उससे दूर रहने की, पति की कही बातों को किसी से न करने की । उपर जिस द्रौपदी को देखा, जाना, यह द्रौपदी उससे बिल्कुल भिन्न है और ऐसी अनेक द्रौपदीयों का मिश्रण है वेदव्यास की यह अनूठी रचना जो आज भी पाठकों को आकृष्ट करती है, मुग्ध करती है, अनेक प्रश्नों को उत्थापित कर बुद्धि को अशान्त करती है और कवि की नूतन कल्पना को झकझोर कर नया रूप ले लेती है।

महाभारत के अन्य नारी पात्रों में से एक प्रमुख पात्र है महारानी कुन्ती । राजकुमारी कुन्ती कुमारी अवस्था से ही श्रेष्ठ संस्कारो से संस्कारित है। सुन्दरी, सुकुमारी वह है सेवा परायणता,निष्ठा, सहिष्णुता तथा चतुरता की स्वामिनी तभी तो दुर्वासा जैसे अग्निपुञ्ज से न केवल दग्ध होने से बची रही वरन् उनसे वर तक प्राप्त कर लिया। उसका जीवन वैचित्र्यमय ही नही संधर्षमय भी रहा। कुमारी अवस्था में स्वयं अपराधी न होने पर भी कर्ण की माता बन,उसे त्याग कर अक्षम्य अपराध तथा असह्य आत्मग्लानि को भीतर समेटे पाण्डु की वल्लभा बन बैठी।(आज भी कही माता कुन्तीयां अपना अपराध न होने पर भी अपने कर्ण का त्याग करती है और अक्षम्य अपराध तथा असह्य आत्मग्लानी को भीतर समेट के जीवन में आगे बढने का प्रयत्न करती है)।परन्तु जीवन वहा भी सहज-सरल कहाँ रह पाया? शापित पाण्डु को जीवित रखने के दायित्व के साथ अपने कर्तव्य- पति के परिवार के प्रति, राज कुल के प्रति प्रेरित हो तीन बार जननी बनना पडा जिसकी जाया कहलाई उससे नहि, उसके आदेश से अन्यो से। फिर भी अन्तिम रक्षा कहा हो पाई। पाण्डु के जाने पर पांच शिशुओं को ले विरोधिता के विषक्त वायु से भरे पतिकुल में पहुँचना और रहना-कुन्ती के लिए कैसा रहा होगा, सहज अनुमेय है। परन्तु कुन्ती की विशेषता यही कि विषम से विषम परिस्थिति में भी दीन नहीं,बिचारी नहीं,विवश नहीं, दम्भ नहीं,गरिमा से पूर्ण ही बनी रही। द्रौपदी के विषय में अनजाने दिये आदेश के अतिरिक्ति

सम्भवतः और कही भी कुन्ती को सोचना नही पडा कि जो किया,वह ठीक नही था। अपने प्रौढ पुत्रों से कुमारी अवस्था के पुत्र कर्ण को जल अर्पण करने का आदेश देती भी कुन्ती की आँखें कहाँ झुकी ? वह तो पुत्रों के उसी सम्मानित माता, पिता, गुरु, पथप्रदर्शक के ऊँचे आसन पर ही विराजित है।

दूसरी और उसी की समपर्याय की नारी है गान्धारी। विश्वसाहीत्यकी एक मात्र उदाहरण अन्धे पति से अधिक भोग न भोगने के कारण अपने पद्मनयनो पर पट्टी बांध लेना। गान्धारी का यह पट्टी बान्धना केवल आँखों पर ही नहीं था,अपने दायित्व पर भी था, कर्तव्य पर भी था, नीति और नियम पर भी था। तभी तो गान्धारी का पति आजीवन अविवेकी बना रहा, उचित को जानकर भी स्वीकार न कर पाया, अनुचित को त्याज्य जान मुंह मोड नहीं पाया। आँखों पर पट्टी बांधने वाली गान्धारी के पुत्र शतसंख्यक कौरव मातृक्रोड में पल तो गए परन्तु प्रतिपालित कहाँ हुए ? अगर होते तो भाईयों से विरोध पनपाता ? मामा के साथ षडयन्त्र चलता ? विदूर का अपमान हो पाता ? द्यूतक्रिडा का आयोजन हो पाता ? द्रौपदी का चीरहरण हो सकता ? कृष्ण विपक्ष का साथ दे पाते और क्या महाभारत युद्ध हो जाता ? शायद गान्धारी का अन्धत्व को वरण करना मात्र अतिमात्रा में पतिभक्ति का नाटक था अथवा जन्मान्ध व्यक्ति के साथ बिना बताये विवाह बन्धन में बन्धे जाने की प्रतिक्रिया। उसे किसी भी परिवेष या परिस्थिति में विवेकजन्य निर्णय तो कहा ही नही जा सकता।

आज भी अनेक गान्धारी अपनी आँखों पर ममता की पट्टी बान्ध कर जीवन व्यतीत कर रही हैं। अपने दायित्व, कर्तव्य, नीति और नियम पर पट्टी बान्ध कर, अपने पति और सन्तान को आजीवन अविवेकी और अपने कर्तव्य से विमुख बना रही है। जिसके कारण आज भी द्रौपदी का वस्त्राहरण हो रहा है,विदूर का अपमान हो रहा है और भाई-भाई के बीच में विरोध पल रहा है.

कुछ न पाकर भी कुन्ती स्वामिनी बनी रही। पुत्रों, पुत्रवधुओं तथा अन्य की हृदय साम्राज्ञी बनी रही और गान्धरी हृदय साम्राज्ञी होकर भी पति के हृदय से दूर,भाई शकुनि के लिये अस्पृश्यतुल्य, पुत्रों के लिए अकिञ्चित्कर और एक मात्र जामाता के कृत्यों से भी लज्जित ही बनी रही। महाभारतकार ने इन दोनों विषम परिस्थितियों की परिणति को दिखलाने के लिये जो ताना-बाना बुना, वह उल्लेखनीय है। आत्मशक्ति, विवेचनाशक्ति, बुद्धि की प्रखरता, उचित में निर्णय की योग्यता, अन्याय के प्रति सजागत और ऐसे अनेक तथ्य है जो व्यक्ति-व्यक्ति में कभी न घटने वाला अन्तर कर देते है।

व्यास की लेखनीप्रसूता सहोदरा अम्बा,अम्बिका और अम्बालिका पर ध्यान केन्द्रित करना समीचीन होगा। काशी के राजा की तीन पुत्रीयों को उनकी स्वयंवर सभा से बलपूर्वक हस्तिनापुर के सर्वेसर्वा भीष्म अपहृत कर लाए अपने भ्रातृ विचित्रवीर्य के साथ विवाह के बन्धन में आबद्ध करने के लिए। शाल्वराज की वाग्दत्ता और उनकी अनुरक्ता अम्बा को यह विवाह करना नारी धर्म के प्रतिकूल लगा। विवेक से प्रेरित उसने सत्यवती तथा भीष्म को अवगत करवा दिया। मर्यादा पालक भीष्म ने अम्बा को सम्मान शाल्वनरेश के पास भेज दिया। पुरुष के अहं तथा नारी के प्रति शुचिता की अपेक्षा ने शाल्व को अम्बा को जीवनसङ्गिनी बनाने की अनुमति प्रदान नही की और अस्वीकृता अम्बा सडक पर आ गई। मानवीय मनोभावों को गहराई से समझने और उकेलने वाले व्यास ने समझा ऐसी परिस्थिति में स्वाभिमानिनी, निरपराधिनी नारी की कैसी प्रतिक्रिया होती है या हो सकती है और तभी अम्बा ने अपनी समस्त दुर्दशा, लाञ्छना, अपमान, अवहेलना का एकमात्र दायी माना भीष्म को। नवनीततुल्य कोमल नारी हृदय प्रस्तरमय बन बैठी। सुकुमारी राजदुलारी विष फुंकारने वाली सर्पिणी बन

बैठी।दृढनिश्चयी, विश्वासी, ध्येय के प्रति एकनिष्ठ अम्बा तभी बन गई शिखण्डी और भीष्म के जीवनपटाक्षेप का कारण बनी परन्तु उसकी सहोदरा अम्बिका और अम्बालिका परिस्थिति की चेरी बनकर ही जीवनयापन करती रही और उसी प्रक्रिया में जीवन के अन्त तक रही। क्षयाग्रस्त पति की जीवन सङ्गिनी बनी, निःसन्तान वैधव्य के सम्मुखीन हुई, श्वश्रूमाता के आदेश से, अनिच्छा, भय, आतङ्क के चलते भी विकृतदर्शन, दुर्गन्धयुक्त पराशर व्यास से नियोग द्वारा गर्भ धारण कीया । कही आग नहीं, चिन्गारी तक नहीं, विरोध नहीं, विद्रोह तो कदापि नहीं। एक ही माता-पिता, एक प्रसाद, एक संसार- संस्कार में प्रतिपालित व्यक्तियों के चिन्तन, मनन, उसके मनोभाव, उनकी किसी विशेष परिस्थिति तथा धटना अथवा व्यक्ति विशेष के सम्बन्ध में प्रतिक्रिया पृथक् हो सकती है और होती है, यह मनोवैज्ञानिक तथ्य वेदव्यस भली-भाती जानते थे।

अम्बा संस्कृत साहीत्य में उस नारी का प्रतिनिधत्व करती है। जो अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए, अपने अपमान के प्रतिकार के लिए असम्भव को भी सम्भव कर दीखाती है।मन ही मन जीसे पति स्वीकार किया वह शाल्व के द्वारा भी तिरस्कृत हो जाना, नारी के सर्वस्व उसके चरित्र पर अविश्वास तथा लाञ्छना का कारण हनने वाले, नारी जीवन को गृहस्थ जीवन से वञ्चित रखने वाले भीष्म को क्षमा न कर पाना, अपने समस्त दुर्भोगों का दायी उसे मान उसके कृत्यों का दण्ड देना अम्बा के जीवन का एकमात्र लक्ष्य बन बैठा था। अप्सरासम शोभदर्शना, लज्जाशीलता, सुकुमारी कोमलहृदया तथा कोमलाङ्गी अम्बा प्रतिहिंसा से कितनी क्रूर, कितनी अदम्या साहसी तथा दृढनिश्चया बन गई, यह उसके व्यकतित्व से स्पष्ट होता है।

महाभारत कालिन द्रौपदी, कुन्ती,गान्धारी या अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका आदि नारीयों आज भी समाज में अपने आत्म सम्मान के आह्वाहन कर रही है।वर्तमान नारी के सन्दर्भ में इतना ही कहना युक्तियुक्त होगा की आज उसे बहुत कुछ मिला जो पहले दुष्प्राप्य था। उसे अधिकार मिला, स्वतन्त्रता मिली, पद मिला, आसन मिला, गौरव मिला, पुरुष के समकक्ष होनेका अवसर मिला परन्तु साथ ही उसे बहुत कुछ खोना पडा, खोना पड रहा है। आज भी वह रूढीयों की, परम्परा की, अक्षमता की, अपनी कुण्ठाओं की, अपने संस्कारों की बन्दिनी है। अपने करणीय और अकरणीय के प्रति आज नारी को स्पष्ट होना है। उसे किस परम्परा का कितना और क्यों पालन करना है और कितना छोडना है, इसे जानने के लिये उसे बहिर्मुखी नहीं होना, अन्तर्मुखी होना है। अपने विवेक से उसे वर्जनाओं और स्वीकार्य में अन्तर करना है। किसी भी प्रलोभन, स्वार्थ, समृद्धि, उन्नति को प्राप्त करने के लिए उसे अपने संस्कारों का गला घोंटकर विवेक का दंशन नहीं सहना है। बाहरी प्रवाह तथा प्रभाव में बहकर आगे बढने में उत्तेजना नहीं, उत्थान नहीं,गौरव तो कदापि नहीं।

नारी ने यदि अपने भीतर की शक्ति को जान लिया, पहचान लिया तो उसे किसी कुण्ठा का, क्षुद्रता का, दुर्बलता का पाश आबद्ध नहीं कर पायेगा। उसे विवेकान्द के शब्दों को सुनना है, अपने भीतर उपलब्ध करना है, "In the highest truth of Para Brahman, there is no distinction of Sex" परन्तु फिर कहती हूँ केवल मुंह से कहने से कुछ नही होगा, इसको आत्मसात् करना है, आत्मनुभूति का विषय बनाना है तभी वह स्वयं अपनी समस्याओं का समाधान करेगी, किसी बाह्य अवलम्बन की आवश्यकता उसे नहीं होंगी। अन्त में स्वामी विवेकानन्द की वाणी का स्मरण रहे की " Who are you to solve the women's problem? They will solve their own problems. "

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि

I. महाभारत- सभापर्व, अध्याय- 63 श्लोक, 28 सं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर.प्रकाशक- स्वाध्याय मण्डल,किल्ला पारडी,द्वितीय आवृत्ति 1982

II. संस्कृत वाङ्मय में नारी- संपादक-सिप्रा बैनर्जी,आई.बी.ए. पब्लिकेशन्स, अम्बाला छावनी।

****

Dr. Manjula J. Viradiya
Associate Professor
Head, Department of Sanskrit
Smt. A.P. Patel Arts & Late N. P. Patel Commerce College
Naroda, Ahmedabad, Gujarat

Copyright © 2012 - 2017 KCG. All Rights Reserved. | Powered By: Knowledge Consortium of Gujarat